REVIEW OF RESEARCH
ISSN: 2249-894X
IMPACT FACTOR : 5.7631(UIF)
VOLUME - 11 | ISSUE - 6 | MARCH - 2022

भारत में भूमि उपयोग और फसल प्रतिरूप का अन्वेषण

हरीश कुमार

सारांश

भारत में भूमि उपयोग और फसल प्रतिरूप दो विषयों पर चर्चा की गई है। हमने भूमि के सामान्य वर्गीकरण से प्रारंभ किया। ये आठ उपयोगों में वर्गीकृत किए गए हैं। हमने नोट किया है कि कृषि प्रयोग के लिए भूमि 1950 से 2021 तक शीर्ष स्थान पर रही है। यह प्रवृत्ति सुरक्षित वनों के अवक्षय या स्थायी चारागाह और चराई की कीमत पर नहीं रही है जो समग्र पारिस्थितिक संतुलन बनाए रखने के लिए महत्त्वपूर्ण है। वास्तव में, इन दोनों प्रयोजनों के लिए उपलब्ध भू-क्षेत्र, इस दौरान बढ़ा है। यह तथ्य हमें बताता है कि प्रारंभ किए गए अन्य उपायों का (जैसे वनीकरण, सामान्य जागरूकता अभियान आदि) देश में भूमि उपयोग प्रतिरूप पर सकारात्मक प्रभाव रहा है। यद्यपि भिन्न-भिन्न प्रकार के फसल प्रतिरूप प्रयोग किए जाते हैं, फिर भी समस्या के कुछ संवेदनशील क्षेत्रों, (जैसे छोटी जोत, निम्न साक्षरता स्तर, आर्थिक क्षमता बढ़ाना आदि) पर ध्यान कें द्रित करना अवश्यक है। ये सभी फसल रीति में वैज्ञानिक तरीकों के प्रयोग के अपेक्षाकृत निम्न स्तर के कारण हैं। कृषि में बाधा डालने वाली कई कमियों के बावजूद बहुत से कृषि उत्पादों में भारत की गणना विश्व-नेताओं में की जाती है।

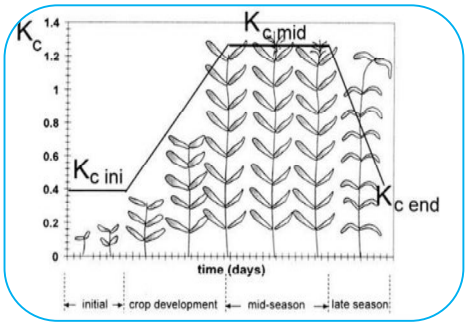

प्रस्तावना

देश में भूमि की उपलब्धता उसकी भौगोलिक सीमाओं द्वारा सीमित रहती है। प्रतिस्पर्धी सेक्टरों (जैसे उद्योग, नगर विकास) की भूमि की आवश्यकताओं को पूरा करना भी जरूरी है। यह कार्य बहुधा कृषि प्रयोजनों के लिए प्रयुक्त भूमि कम करके किया जाता है। इस प्रकार खेती के लिए उपलब्ध भूमि का विस्तार करने की गुंजाइश बहुत कम होती है। दूसरी ओर, खाद्यान्नों की आवश्यकता जनसंख्या वृद्धि, बदलती हुई रुचियों और उन्नत आय स्तरों के कारण तथा भूमंडलीय आर्थिक परिदृश्य को नियंत्रित करने वाले कारकों के कारण निरंतर बढ़ रही है। यद्यपि यह तर्क दिया जा सकता है कि देश के अंदर कृषि उत्पादों को पैदा करना वैश्वीकरण के युग में इतना महत्त्वपूर्ण नहीं है, किंतु भारत जैसे विकासशील देशों में, जहां जनसंख्या का बहुत बड़ा भाग अपनी आजीविका के लिए निर्वाही कृषि पर निर्भर रहता है, वहां नीतिगत उपायों (जैसे ऋण आपूर्ति, विस्तार सेवाओं) द्वारा कृषि उत्पादों की सहायता करना आवश्यक है। कृषि कार्यों की वाणिज्यिक व्यावहारिकता ने वैश्वीकृत अर्थव्यवस्था में अत्यधिक महत्त्व धारण कर लिया किया है। इसलिए बहुत से कारणों से सामान्य भूमि उपयोग प्रतिरूप को और विशेष रूप से फसल उत्पादन के प्रतिरूप को प्रभावित करने वाले निहित कारकों के अध्ययन को महत्त्व दिया जाता है। इस संदर्भ में भारत में भूमि उपयोग और फसल प्रतिरूप, दो विषयों का विवेचन करने का प्रयास किया गया है।

भूमि उपयोग का विवरण

यह सत्य है कि कृषि भूमि के विभिन्न हिस्से खेती के लिए प्रभावी ढंग से प्रयुक्त नहीं हो सकते। यह तब स्पष्ट होगा जब हम वैकल्पिक प्रयोग पर विचार करेंगे कि कौन सी भूमि गैर-कृषि कार्यों के लिए प्रयुक्त की

जा सकती है। इसलिए वस्तुतः खेती के लिए उपलब्ध वास्तविक भूमि (फसल का सकल क्षेत्रफल कहा जाता है) सदा सीमित होती है। अतः सबसे पहले हम भूमि के प्रयोग के प्रकार के आधार पर उसके वर्गीकरण से परिचित होंगे । बाद में हम भारत में भूमि के वितरण की रचना पर उसके ''प्रयोग के प्रकार'' पर इस फोकस के साथ विचार करेंगे कि कालांतर में प्रयोग के उसके प्रतिरूप में क्या-क्या परिवर्तन हुए हैं। इसके लिए हम तुलना के लिए दो अवधियां लेंगे : स्वतंत्रता के समय के निकट (1950) और नवीनतम वर्ष (1980) जिसके आंकड़े हमें उपलब्ध हैं। हम देखेंगे कि खेती के अधीन कुल क्षेत्रफल (गैर-कृषि कार्यों के लिए भूमि प्रयोग के बावजूद) इस दौरान वास्तव में बढ़ा है। यह कैसे संभव है? इस उपलब्धि के लिए किसका योगदान रहा है? ये पहलू हैं जिन पर हम इस भाग में ज्ञान कर सकेंगे।

प्रयोग के प्रकार के अनुसार भूमि का वर्गीकरण

कुल भूमि क्षेत्रफल को, मोटेतौर पर, ''प्रयोग के प्रकार'' के अनुसार इस प्रकार वर्गीकृत किया जाता है (i) कृष्यभूमि (अर्थात् निवल बोआई क्षेत्रफल), (ii) पड़ती भूमि (जोताई किया गया क्षेत्रफल, परन्तु बोआई के बिना छोड़ा गया) (iii) गैर-कृषि प्रयोग के अधीन क्षेत्रफल (vi) बंजर और अकृष्य भूमि, (v) स्थायी चारागाह और अन्य चराई भूमि, (vi) विविध वृक्ष और फसलों के अधीन क्षेत्रफल (निवई बोआई क्षेत्रफल) और (vii) 'वन' के अधीन क्षेत्रफल और (viii) ''कृषि योग्य बंजर'' के अधीन क्षेत्रफल। गैर-कृषि प्रयोग के अधीन क्षेत्रफल का उदाहरण उद्योगों के लिए प्रयुक्त भूमि है। वन और स्थायी चारागाह/चराई के अधीन भूमि पशुओं और सृष्टि में अन्य जीवों की आवश्यकता के अनुसार पारिस्थितिकी संतुलन बनाए रखने के लिए आवश्यक है। इसलिए भूमि के प्रयोग के व्यापक प्रारूप से यह भी स्पष्ट होता है कि कृषि उत्पाद की वृद्धि दर केवल बेहतर रीति और प्रौद्योगिकी के प्रयोग द्वारा बढ़ाई जा सकती है।

इस प्रकार कृषि की बेहतर और नई रीतियां सामान्य तथा खाद्य अभाव और विशेष रूप से गरीब किसानों की समस्या दूर करने की दृष्टि से आवश्यक हैं। भारत जैसी उन विकासशील अर्थव्यवस्थाओं के संदर्भ में भूमि उपयोग से संबंधित कुछ महत्त्वपूर्ण समस्याएं हैं जिनकी जनसंख्या का बहुत बड़ा भाग कृषि पर आश्रित है। सबसे पहली समस्या खंडित जोतों की बहुत अधिक संख्या है। यद्यपि कृषि अभी भी रोजगार आय का प्रमुख स्रोत है, किंतु ऐसी छोटी जोतों पर ही परिवार निर्भर है ऐसे मामलों में खेती के नए तरीकों के क्रियान्वयन की गुंजाइश सीमित है। बहुत से कारक जैसे पूँजी का अभाव/दबाव, निम्न साक्षरता स्तर, आदि नई रीतियों को अपनाने में बड़ी बाधाएं हैं। इसके साथ ही भूमि के दुरुपयोग, और पर्यावरण पर इसके प्रभाव की समस्याएं हैं। दूसरा, औद्योगिकीकरण के लिए भूमि उपलब्ध कराने पर विकासनीति का सदा मुख्य आग्रह रहता है। इसका कारण विश्व भर में विकास के साथ-साथ विकास कृषि पर निर्भरता में कमी और उद्योग के पक्ष में की प्रवृत्ति संरचनात्मक परिवर्तन है। यह प्रवृत्ति, उद्योग द्वारा भूमि पर प्रतिस्पर्धी दावों के साथ-साथ बाधित आजीविका, आबंटन और पर्यावरण चिंताओं से निपटने की नीति का भी संकेत देती है। हाल ही के वर्षों में पुनर्वास और पुनर्स्थापना (R&R) की नीति के अंतर्गत कई उपाय हुए हैं जिनके अनुसार अधिगृहीत भूमि के लिए वित्तीय क्षतिपूर्ति के अलावा, नौकरी के आश्वासन की गारंटी, विधायी प्रावधानों द्वारा दी गई है। वनरोपण उपायों जैसे कार्यों से वन भूमि का भाग बढ़ाने और पर्यावरण संबंधी समस्या दूर करने का लक्ष्य रखा गया है। ये सरकार की नीति के मुख्य आग्रह हैं।

मृदाएं और उनकी परिवर्तनशीलता

मृदा की किस्म और गुणवत्ता फसलों की उस किस्म को अत्यधिक प्रभावित करती है जो किसी क्षेत्र में उगाए जा सकते हैं। ये पौधों की वृद्धि के लिए आवश्यक आदान हैं, किंतु सभी जगह एक जैसी गुणसंपन्न मृदा नहीं मिलती। मृदा की विभिन्न किस्में अपनी विशिष्ट भौतिक, रासायनिक और जैविक विशेषताओं द्वारा विभिन्न फसलों को अलग-अलग तरीके से लाभ पहुंचाती हैं। उदाहरण के लिए, ''जलोढ़ मृदा'' में भरपूर पोटैशियम होता है और यह धान, गन्ना और केला जैसी फसलों के लिए बहुत उपयुक्त है। इसी प्रकार लाल मृदा में अत्यधिक लौह मात्रा होती है और यह चनों की भिन्न-भिन्न किस्मों (जैसे लाल, बंगाली, हरे), मूंगफली और एरंडी बीज उगाने के लिए बहुत उपयुक्त है। अधिक पैदावार और अच्छी उपज तभी प्राप्त की जा सकती है जब फसल के

लिए सही किस्म की मृदा प्रयुक्त की गई हो। क्षेत्र में उपलब्ध मृदा की गुणवत्ता का परीक्षण मृदा परीक्षण प्रयोगशालाओं में किया जा सकता है। उन क्षेत्रों के लिए, जिनमें उपयुक्त मृदा उपलब्ध नहीं है, उर्वरक के रूप में उसे उपजाऊ बनाने के लिए पोषक तत्त्व जोड़े जा सकते हैं। ऐसे क्षेत्रों में मृदा का वैज्ञानिक परीक्षण उपयोगी होता है।

एक ही फसल को बार-बार लगाने से मृदा की उर्वरता क्षीण भी हो जाती है। प्राकृतिक कारकों, जैसे वायु और पानी से मृदा का अपादान भी हो सकता है। इसलिए मृदा की गहराई/गुणवत्ता प्रत्ये क क्षेत्र में अलग-अलग होती है। इस अनुभाग में हम संक्षेप में भारत के भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में विद्यमान मृदा की किस्मों और उसके क्षारण में सहायक कारकों के बारे में जानने का प्रयास करेंगे।

मृदा के प्रकार

मृदा का वर्गीकरण क्षेत्र और उसे प्रभावित करने वाले कारकों पर निर्भर करता है। क्षेत्रीय और प्राकृतिक कारकों के योगदान (जैसे पर्वतीय क्षेत्र, मरु भूमि, समुद्रतट के समीप की मृदा) पर निर्भर करते हुए मृदा का रंग और उसकी उर्वरता के स्तर अलग-अलग होते हैं। मृदा की कुछ किस्में उनके रंग (जैसे लाल मृदा, काली मृदा आदि) से पहचानी जा सकती हैं । कुछ अन्य (जैसे लैटेराइट, जलोढ़ आदि) उनकी रासायनिक/भौगोलिक विशेषताओं के आधार पर पहचानी जाती हैं । देश में मृदा की किस्मों और उनके क्षेत्रों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है;

i) **लाल मृदा** : यह वह मृदा है जिसके रंग में विभिन्न लौह आक्साइड की उपस्थिति के कारण लाली होती है। इस किस्म की मृदा में जैव पदार्थ कम होते हैं जो मृदा की उर्वरता विशेषता बढ़ाने के लिए महत्त्वपूर्ण हैं। तमिलनाडु में फसल के क्षेत्रफल का लगभग दो तिहाई भाग इस किस्म की मृदा है। दक्षिण भारत के अन्य भागों, (जैसे कर्नाटक, गोवा, दमन और द्वीप, आंध्र प्रदेश) दक्षिण पूर्वी महाराष्ट्र, छत्तीसगढ़, उड़ीसा और झारखंड, बिहार और पश्चिम बंगाल के कुछ भागों में भी लाल मृदा बहुतायत में है।

ii) **काली मृदा** : यह वह मृदा है जो दक्षिण पठार में पाई जाती है। यह गहरी भूरी से काले भूरे रंग की हो सकती हैं। इस प्रकार की मृदा जैव पदार्थ में समृद्ध होती है और कपास की खेती के लिए बहुत उपयुक्त है। यह पोटैशियम, और मैग्नेशियम जैसे उपयोगी रासायनों से समृद्ध है। कपास, तंबाकू, मिर्च, तिलहन, ज्वार, रागी और मकई जैसे फसलें इस किस्म की मृदा में अच्छी उगती हैं। यह महाराष्ट्र के बड़े भागों और मध्य प्रदेश के भागों, गुजरात और तमिलनाडु में पाई जाती है। निचले स्थानों की अपेक्षा की उच्च भूमि में पायी गयी काली मृदा अपेक्षाकृत कम उत्पादनकारी है।

iii) **भूरी मृदा** : यह तीसरी किस्म की मृदा है जो उसके रंग से पहचानी जाती है, पृष्ठीय मृदा भूरे रंग की होती है। यह देश के सबसे अधिक भागों में पाई गई सामान्य मृदा है और जैवपदार्थों से सामान्यतः समृद्ध होती है।

iv) **लैटेराइट मृदा** : ले टेराइट मृदा कर्नाटक, केरल, मध्यप्रदेश के पहाड़ों, उड़ीसा, पश्चिमी बंगाल और तमिलनाडु के पूर्वी घाटों में पायी जाती है। यह कम ऊंचाइयों में जैवपदार्थ से समृद्ध है और धान की पैदावार के लिए उपयुक्त है। अधिक ऊंचाईयों में यह चाय, सिन्कोना, काफी और रबड़ उगाने के लिए उपयुक्त है। यह मृदा उन क्षेत्रों में विद्यमान है जहां विरामी आर्द्र जलवायु होती है।

v) **जलोढ़ मृदा** : यह भारत का विशालतम और सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण मृदा समूह है और कृषि में इस मृदा का अंश सबसे अधिक है। उत्तर और पूर्व (अर्थात् , उत्तर प्रदेश, पश्चिम बंगाल और असम के क्षेत्रों) में गंगा और ब्रह्मपुत्र नदियों के डे ल्टा और पश्चिम/दक्षिण (अर्थात् गुजरात, तमिलनाडु, केरल) के डेल्टा/तटीय क्षेत्र द्वारा निर्मित ये मृदा चूने में समृद्ध है परन्तु पर्याप्त लवणीय और क्षारीय भी है।

vi) **मरूभूमि** : यह बलुई मिट्टी है, इसमें जैव पदार्थ कम है। वे पश्चिमी राजस्थान, हरियाणा और पंजाब में पाई जाती है । सिन्धु नदी समूह और अरावली पर्वत श्रृंखला द्वारा प्रभावित यह मृदा भी क्षारीय से लवणीय होती है। बहुत से जल विले य खनिजों के बावजूद इसमें पोषक तत्त्व कम होते हैं। फिर भी जहां बहुत अधिक वर्षा होती है ये मृदा क्षेत्रों में नारियल, काजू और कैजुआराइना उगाने के लिए उपयुक्त है।

vii) **तराई मृदा** : तराई मृदा हिमालय क्षेत्र की पहाड़ियों पाया जाती है। यह क्षेत्र जम्मू और कश्मीर, उत्तर प्रदेश, बिहार और पश्चिम बंगाल राज्यों में फैला है। यह निम्न हिमालयली क्षेत्र से सामग्रियों के नीचे की ओर संचनन द्वारा निर्मित हुई है।

viii) **लवणीय और क्षारीय मृदा** : इनमें विलेय नमक की बहुत मात्रा होती है, भारत में लगभग 7 मिलियन हेक्टर भूमि लवणीय है, जो खेती के लिए अनुयुक्त है।

मृदा अपरदन को प्रभावित करने वाले कारक

वर्षा, वायु, पशुओं की अतिचराई, निर्माण जैसे मानवीय कार्यों द्वारा मृदा का अपरदन होता है। भारत में जल द्वारा अपरदन की समस्या सबसे अधिक गंभीर है, विशेषकर पूर्वी भागों में, जहाँ वर्षा की ऋतुओं के दौरान आप्लावन की गंभीर समस्या उत्पन्न होती है। जल द्वारा मृदा अपरदन का अनुमान प्रतिवर्ष लगभग 5334 मिलियन टन लगाया गया है। इसमें से लगभग 30 प्रतिवर्ष स्थायी रूप से समुद्र में चला जाता है। जल के बाद मृदा अपरदन के लिए प्रमुख दोषी कारक वायु है। यह शुष्क राजस्थान, हरियाणा, गुजरात और पंजाब के शुष्क क्षेत्रों (अर्थात् शुष्क जहां वर्षा नहीं होती है) गंभीर समस्या है। वायु द्वारा अपरदन उन तटीय क्षेत्रों में भी व्यापक रूप से होता है जहां बलुई मृदा अधिक है। इन प्राकृतिक कारकों के अलावा, मानव प्रेरित कारक जैसे प्राकृतिक वानस्पतिक आवरण का अत्यधिक विदोहन (सीमांत क्षेत्रों में कृषि के विस्तार और अत्यधिक चराई द्वारा) भी वायु द्वारा मृदा के अधिक अपरदन के लिए उत्तरदायी हो जाते हैं।

भारत में फसल प्रतिरूप

फसल प्रतिरूप के बहुत आयाम हैं। हम यहाँ पर उसके दो मुख्य आयामों का विशेष रूप से उल्लेख करेंगे। इसे क्षेत्र/खेत में उगाई गई फसलों की संख्या के अनुसार देखा जा सकता है। इस परिप्रेक्ष्य से इसका संबंध अपनाई गई फसल प्रणाली से है। (अर्थात् , एक फसल, बहु फसल आदि)। हम आगे इस पर अधिक विस्तार से चर्चा करेंगे । इसके एक अन्य संक्षिप्त विवरण में उगाई गई फसलों के प्रकार बताए गए हैं (अर्थात् चावल आधारित फसल प्रतिरूप मकई आधारित फसल प्रतिरूप आदि)। इसे भारत में आम प्रचलित फसल प्रतिरूप (मानसून के बाद की फसल) खरीफ फसल प्रतिरूप (मानसूनी फसल) के रूप में दो फसल प्रतिरूपों से जोड़ा गया है। इसके अधीन क्षेत्र के बोआई क्षेत्रफल के अधिकतम प्रतिशत में जो फसल पैदा की जाती है उसी के आधार पर फसल के प्रतिरूप का नाम रखा जाता है। अन्य बोई गई फसलों को स्थानापन्न फसलों के रूप में माना जाता है। इस आधार पर स्थानापन्न के अधीन रबी फसल प्रतिरूप को गेहूं/चना आधारित और ज्वार आधारित फसल प्रतिरूप में विभाजित किया जाता है। दूसरी ओर खरीफ फसल पैटर्न में उगाई गई/बोई गई आधार फसलें बहुत होती हैं , जैसे चावल आधारित, धान आधारित, मकई आधारित, ज्वार आधारित, बाजरा आधारित, मूंगफली आधारित, कपास आधारित आदि।

फसल प्रतिरूप के प्रकार

एक फसल और बहुफसल : यदि वर्ष दर वर्ष भूमि के टुकड़े पर एक ही फसल उगाई जाती है इसे **एक फसल** प्रणाली कहा जाता है। ऐसी प्रथा या तो जलवायु की अत्यंत उपयुक्तता के कारण अपनाई जाती है या किसी की सामाजिक, आर्थिक दशा के कारण। यह फसल के उस खास प्रकार में उगाने में किसान की विशेषज्ञता के कारण भी हो सकता है। उदाहरण के लिए, नहर सिंचित क्षेत्रों में जलाक्रांति दशाओं में केवल धान बोया जा सकता है, क्योंकि ऐसी दशाओं कोई अन्य फसल बोना संभव नहीं है। एक कलैं डर वर्ष में उसी भूमि के टुकड़े पर एक से अधिक फसल उगाने को बहु फसल प्रणाली कहा जाता है। इसलिए बहु फसल का अभिप्राय समय पर फसल की सघनता और स्थान का विस्तार है। अर्थात्, एक समय में एक फसल और किसी भी निर्धारित समय में उसी भूमि पर एक से अधिक फसलें। फसल प्रतिरूप की तीन किस्म, अर्थात्, अंतरा फसल मिश्रित फसल और अनुक्रम फसल, भी व्यवहार में लाई गई बहु फसल प्रणाली के ही अंतर्भेद हैं।

फसल प्रतिरूप को प्रभावित करने वाले कारक

विभिन्न कारक, जैसे किसानों की सामाजिक आर्थिक दशाएं, सांस्कृतिक कारक, जलवायु दशाएं आदि क्षेत्र में फसल प्रतिरूप निर्धारित या प्रभावित करते हैं। इस संबंध में मुख्य कारक निम्नलिखित हो सकते हैं।

i) **भूमि जोत का आकार** : इकाई की प्रस्तावना में उल्लिखित, भारत में छोटे और सीमांत किसान कृषि समुदाय का बहुत बड़ा भाग हैं। इस कारण से एक फसल प्रतिरूप बहुत अधिक प्रचलित है क्योंकि यह किसान के परिवार खाद्य आवश्यकताएं पूरी करता है। स्थिति ऐसी होती है कि वाणिज्यिक फसल की बहुत कम गुंजाइश रहती है।

ii) **साक्षरता** : फसल के लिए बेहतर तरीके अपनाने के लिए शिक्षा का कुछ स्तर प्राप्त करना आवश्यक है। यह भारत के संदर्भ में छोटे और सीमांत किसान समुदाय में अत्यधिक निरक्षरता के कारण है जो बड़ी संख्या में हैं। प्रौद्योगिकीय आदानों की आवश्यकता वाले मिश्र फसल प्रतिरूप में अंतर्निहित वैज्ञानिक तरीकों का प्रयोग में यह कारक (अर्थात् ् निरक्षरता) बड़ी बाधा है।

iii) **वित्तीय आवश्यकता स्थायित्व** : बड़ी संख्या में किसानों की खराब आर्थिक दशा के कारण मध्यम से उच्च पूँजी आवश्यकता वाले फसल प्रतिरूप किसानों द्वारा नही अपनाए जा सकते। वे कम लागत के ऐसी फसल प्रतिरूप अपनाने के लिए विवश होते हैं जो कम उत्पाद और आय देते हैं।

iv) **रोग/कीट प्रवर्धन/नियंत्रण** : यह ऊपर उल्लिखित छोटे किसानों की वित्तीय और शैक्षिक स्थिति के कारकों को जोड़ देता है। इसके कारण किसान आधुनिक रोग/कीट नियंत्रण उपाय नही अपना सकते।

v) **पारिस्थितिक उपयुक्तता** : क्षेत्र का फसल प्रतिरूप फसलों के लिए पारिस्थितिक उपयुक्तता पर अत्यधिक निर्भर करता है। स्थानीय पारिस्थितिक कारकों के अनुकूल फसल प्रतिरूप अपनाने में मृदा परीक्षण और प्रचलित दशाओं के लिए अपेक्षित आदानों के प्रयोग की आवश्यकता होगी। एक बार फिर सामाजिक/ आर्थिक हैसियत प्राकृतिक दशा के इस स्वरूप का सामना करने में बाधक कारक होता है।

चुनिंदा फसल उत्पादन पर विश्व में भारत की स्थिति

विश्व में भारत भैंस के दूध के उत्पादन में पहले स्थान पर है। कई अन्य उत्पाद हैं जिनमें भारत का स्थान विश्व में अपने उत्पादन में पहला है (जैसे ताजे फल, धनिया, नीबू, काजू, सूखी मिर्च और कालीमिर्च, अदरक, हल्दी, जूट, गर्म मसाले, दलहन, एरंड का तेल, ज्वार, बाजरा आदि (मिलेट), कुसुम बीज, खट्टा नीबू, बकरी का दूध आदि)। हम धान (चावल) के उत्पादन में विश्व में दूसरे स्थान पर हैं। 2008 में लगभग 148 मिलियन टन समग्र उत्पादन हुआ था। अन्य वस्तुओं, जिनमें विश्व में भारत दूसरे सबसे बड़े उत्पादक के रूप में उभरा है, वे हैं गेहूं, गाय का दूध, ताजी सब्जियां, बिनौला, बैंगन, लहसुन, रेशम, इलायची, प्याज, गन्ना, सूखी सेम, हरी मटर, कद्दू, आलू, स्थलीय मछली आदि। कई उत्पादों, जिनमें भारत विश्व बाजार में तीसरे स्थान पर है, उनमें शामिल हैः ज्वार, तंबाकू, नारियल, तोरियाबीज, टमाटर, मुर्गी के अंडे आदि। काफी उत्पादन में भारत का स्थान विश्व में छठा है। इसलिए पिछले भागों में सामान्यतया सामने आने वाली चुनौतियों के रूप में साथ-साथ कार्य करते हुए भारतीय कृषि की विभिन्न विशेषताओं का उल्ले ख करने के बाद यह जानना भी समान रूप से महत्त्वपूर्ण है कि कृषि के बहुत से उत्पादों में हम भी विश्व नेताओं में है।

संदर्भ

Chadha G K , S. Sen and H. R. Sharma (2004): *Land Resources , State of Indian Farmer: A Millennium Study*, Vol. 2, Academic Publishers, New Delhi.

Govt. of India (2001): Report of the Working Group on Agricultural Statistics (for the X Five Year Plan), Planning Commission, New Delhi.

Rajiv Ranjan Shrivastava (2007): *Emerging Trends of Cropping Pattern in India*, DK Publishers, New Delhi.

हरीश कुमार